



जीवन में हर व्यक्ति शांति और सुख की कामना करता है। शायद ही कोई ऐसा होगा जिसे शांति प्रिय न हो। फिर भी यह एक सच्चाई है कि संसार में बहुत कम घर ऐसे होते हैं जो पूरी तरह कलह से मुक्त हों।

अधिकांश घरों में कलह किसी बड़े कारण से नहीं, बल्कि बहुत छोटी-छोटी बातों से जन्म लेती है और धीरे-धीरे वही बातें घर के वातावरण को बोझिल बना देती हैं।

अक्सर ऐसा होता है कि घर का कोई एक सदस्य अधिकतर पिता अनजाने में पूरे घर का माहौल कलेशी बना देते हैं।

कार्यालय से थके हुए लौटे पिता, बाहर की चिंता और तनाव घर के भीतर ले आते हैं। चाय जरा देर से मिल गई, टीवी की आवाज अधिक हो गई, बच्चे जोर से हंस दिए और बात अचानक तानों में बदल जाती है।

‘इस घर में किसी को समझ नहीं है।’

‘दिनभर मेहनत हम करें और यहां किसी को कद्र नहीं।’

बात चाय या टीवी की नहीं होती, पर शब्दों का भार पूरे घर पर पड़ता है। मां चुप हो जाती है, बच्चे सहम जाते हैं, और घर जो विश्राम का स्थान होना चाहिए, तनाव का क्षेत्र बन जाता है।

कई बार अनुशासन के नाम पर हर बात पर टोकना शुरू हो जाता है।

‘लाइट क्यों जल रही है?’

‘मोबाइल हाथ में क्यों है?’

‘इतना हंस क्यों रहे हो?’

इन प्रश्नों में चिंता कम और नियंत्रण अधिक होता है। धीरे-धीरे घर संवाद का स्थान नहीं रह जाता, बल्कि निर्देशों और नाराज़गी का केन्द्र बन जाता है।

जब कोई व्यक्ति लम्बे समय तक ऐसे कलहपूर्ण वातावरण में रहता है, तो उसका स्वभाव भी प्रभावित होने लगता है। वह या तो चिड़चिड़ा हो जाता है या भीतर ही भीतर टूटने लगता है। कलह हमारी मानसिक ऊर्जा को क्षीण करता है और हमारे आत्मविश्वास तथा आंतरिक संतुलन को धीरे-धीरे खा जाता है।

स्वाभाविक है कि मन यह चाहता है कि ऐसे वातावरण से दूर चला जाए। पर व्यवहार में यह सदैव संभव नहीं होता। क्योंकि कलह करने वाला व्यक्ति कोई बाहरी नहीं, बल्कि हमारा अपना ही होता है पिता, जीवन साथी, भाई या कोई निकट संबंधी जिसे हम न तो छोड़ सकते हैं और न ही उससे पूर्णतः अलग हो सकते हैं।

ऐसी स्थिति में प्रश्न यह नहीं रह जाता कि सामने वाले को कैसे बदला जाए, बल्कि यह हो जाता है कि हम स्वयं को कैसे बचाएं?

उत्तर है - कलह को अपनी सोच से अलग करना। क्योंकि जैसा हम सोचते हैं, वैसा ही हम बनते चले जाते हैं।

अष्टावक्र गीता में अष्टावक्र, राजा जनक की जिज्ञासा का शमन करते हुए कहते हैं -

मुक्ताभिमानी मुक्तो हि बद्धो बद्धाभिमान्यपि।

किंवदन्तीह सत्येयं वा मतिः सा गतिर्भवेत्॥

अर्थात् मनुष्य वास्तव में वही है, जैसा वह अपने को

कलह मूलतः बाहरी टकराव नहीं, बल्कि मन के भीतर पैदा हुई असंतुलित ऊर्जा का प्रकट रूप है। यह अक्सर शब्दों से शुरू होती है, पर धीरे-धीरे भावनाओं, संबंधों और वातावरण को ग्रसित कर लेती है।

लंबे समय तक कलह में रहने से व्यक्ति या तो आक्रामक हो जाता है या भीतर ही भीतर स्वयं को खोने लगता है। सबसे बड़ा खतरा यह है कि कलह संक्रामक होती है जिससे हम पीड़ित होते हैं, अनजाने में वही स्वर और वही कठोरता हम भी अपना लेते हैं। तब संघर्ष बाहरी न रहकर हमारी पहचान का हिस्सा बन जाता है।

कलह का वास्तविक समाधान सामने वाले को बदलने में नहीं, बल्कि अपनी प्रतिक्रिया, दृष्टि और चेतना को स्थिर रखने में है।

- सद्गुरुदेव नन्द किशोर जी श्रीमाली।



मानता है। जो स्वयं को मुक्त मानता है, वह मुक्त हो जाता है, और जो स्वयं को बंधा हुआ मानता है, वह बंधन में ही रहता है। जैसी बुद्धि होती है, वैसी ही गति बन जाती है।

जीवन में हम वही बन जाते हैं, जैसा हम सोचते हैं। हमारा चिंतन ही हमारा ईश्वर है। हम वही प्राप्त करते हैं, जिसकी आकांक्षा हम भीतर से करते हैं। हम बंधे हैं या मुक्त यह बाहरी परिस्थितियां नहीं, बल्कि हमारा चिंतन तय करता है। और वही चिंतन धीरे-धीरे हमारा सत्य बन जाता है।

यह एक अत्यंत क्रांतिकारी सत्य है दो धार वाली तलवार की भांति जिसके प्रति सदा सजग रहना आवश्यक है। कलहपूर्ण वातावरण में सबसे बड़ा खतरा यह होता है कि हम अनजाने में उसी स्वर, उसी कठोरता और उसी असंतुलन को अपना लेते हैं, जिससे हम पीड़ित हैं। भीतर लगातार एक मानसिक बहस चलती रहती है क्या कहना था, क्या कह दिया, क्या उत्तर देना चाहिए था। धीरे-धीरे हमारी ऊर्जा उसी संघर्ष में नष्ट हो जाती है।

इसीलिए यह जानना आवश्यक हो जाता है कि कलह के बीच रहते हुए भी अपने व्यक्तित्व, अपनी सहजता और अपने आंतरिक संतुलन को कैसे सुरक्षित रखा जाए?

पहला सूत्र है कि - हर संघर्ष व्यक्तिगत नहीं होता

अक्सर पिता जो कठोर बोलते हैं, वह द्वेष से नहीं, बल्कि अपने भीतर की असफलताओं, भय और दबाव से बोलते हैं। यह समझ आते ही क्रोध की तीव्रता कम हो जाती है। हर बात को दिल पर लेना आवश्यक नहीं होता।

दूसरा सूत्र है - प्रतिक्रिया और उत्तर का अंतर समझना

प्रतिक्रिया तुरन्त होती है और आग में घी का काम करती है। उत्तर विवेक से आता है और कई बार मौन, सबसे शांत और प्रभावशाली उत्तर बन जाता है।

तीसरा है - अपने अधिकार क्षेत्र को पहचानना

हम दूसरों का स्वभाव नहीं बदल सकते, पर अपनी सोच, अपनी वाणी और अपनी प्रतिक्रिया अवश्य बदल सकते हैं। यहीं से संतुलन आरंभ होता है।

चौथा है - भावनात्मक दूरी, संवेदनहीनता नहीं है

हर कटु शब्द को भीतर उतार लेना आत्महानि है। कुछ बातों को वहीं छोड़ देना, स्वयं की रक्षा करना है।

पांचवां उपाय है - नियमित आत्म चिंतन और साधना

जब बाहर अशांति हो, तब भीतर का दीपक और तेज जलाना पड़ता है। ध्यान, जप, प्रार्थना या स्वाध्याय के माध्यम से।

छठा - हर युद्ध लड़ना आवश्यक नहीं

कुछ स्थितियों में पीछे हट जाना, स्वयं को अलग कर लेना कायरता नहीं, बल्कि बुद्धिमत्ता है।

और अंत में स्मरण रखें

कलह के बीच शांत रह पाना कोई साधारण बात नहीं है। यह स्वयं में एक साधना है। जिसने अपने भीतर संतुलन साध लिया, उसके लिए बाहरी कलह केवल एक घटना रह जाती है उसकी पहचान नहीं।